

जैन दर्शन में वर्णित धर्म के दश लक्षणों का मानवीय विकास से सामाजिक सरोकार

डॉ. दीपा जैन

मानद शोध निदेशक- जनसहभागिता विकास संस्थान, 73 महादेवनगर, न्यूलोहामण्डी
रोड, जयपुर-302013 (राजस्थान) E-mail: dr.deepa_jain@yahoo.in मो.09829073311

भूमिका-

मानव के विकास में आन्तरिक व बाह्य गुणों की अहम् भूमिका होती है। व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियों को जगाने में विशुद्ध चिन्तन और शुद्ध चरित्र अर्थात् आचरण की आवश्यकता होती है। शुद्ध ध्येय की सिद्धि हेतु शुद्ध साधन व प्रयास अनिवार्य है। यदि एक व्यक्ति सही आचरण करता है तो इसमें उसका तो हित है ही किन्तु उसमें अन्य का अहित नहीं होता है। इस प्रकार समाज में एक ऐसी स्वस्थ परम्परा का सूत्रपात होता है जिसमें अभय है, शांति है, मैत्रीयता है, अनासक्ति है, साधर्मि के प्रति वात्सल्य है, अपने कर्मों की दिशा को पहचानने की क्षमता तथा सही दिशा में उसका रुख मोड़ने का सामर्थ्य है, पुरुषार्थ है अपने विकारों की निर्जरा का और जीवन को निःस्वार्थ भाव से अंतिम गंतव्य तक ले जाने का जिसमें सभी की खुशी है। जैन धर्म में दशलक्षण पर्व आत्म शुद्धि व साधना हेतु हर वर्ष मनाया जाता है। जिसमें समीक्षात्मक रूप से अपने जाने-अनजाने व विवशता में किए गए मन, वचन व कायिक आचरण की आलोचना की जाती है, प्रतिक्रमण किया जाता है तथा भविष्य में इनका जीवन में दोहरावीकरण न हो, संयमादि संकल्प के द्वारा आध्यात्मिक उत्कृष्टता के सोपानों पर आगे बढ़ने हेतु आयोजन की कवायत इस महपर्व के दौरान की जाती है।

वीतरागी के स्तवन या पूजन से कोई प्रयोजन नहीं होता लेकिन जो जीव उसकी स्तुति या नामोच्चार करते हैं उसे स्वयं के जिनत्व का बोध होता है। मेरु जैसे विशाल कर्मों के पर्वत भी स्तुति से क्षण मात्र में ढह जाते हैं स्तवन करने वाले जीव की आत्मा में सुख-शान्ति जैसे आदर्श गुण प्रति क्षण फलते फूलते रहते हैं। वन्दन करने से क्रन्दन(रोना) मिटता है और संसार में जीव का अभिनन्दन होता है वन्दन करने वाले जीवों की बुद्धि ख्याति विनय गुण की प्रशंसा चन्दन की गंध के समान स्वतः फैलती है जो व्यक्ति वन्दन के भावों को अपनाते हैं, वे सज्जन कहलाते हैं क्योंकि लघुता में ही प्रभुता बसती है ऐसा गुरुजन कहते

हैं। आपने क्या कमाया उस पर कभी भी घमंड मत करना क्योंकि शतरंज की पारी खत्म होने के बाद राजा और मोहरे एक ही डब्बे में रख दिये जाते हैं। वास्तव में श्रावक दशलक्षण पर्व में धर्म के दश लक्षणों की आराधना हर वर्ष आत्मशुद्धि, विचार शुद्धि एवं चित्त की विशुद्धता हेतु करता है। उमास्वामि विरचित त्वार्थसूत्र के नवमें अध्याय में "उत्तमक्षमामार्दवआर्जवसत्यशौचसंयमसपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणिधर्मः।" दश धर्मों के अंगों का वर्णन है। इस सभी अंगों के लक्षणों की समझ व मानवीय सामाजिक विकास से इनका सरोकार निम्नवत् रूप से स्पष्ट किया जा सकता है।

उत्तम क्षमा-

क्ष अर्थात् क्षय मा अर्थात् मान स्वयं के मान का क्षय करना ही क्षमा है। क्षमा वीरस्य भूषणम्। अपने से निबल की गलतियों को मन से क्षमा करना किसी कायर का काम नहीं है। इसके लिए धैर्य, साहस व मानवीय संवेदनाओं का समुच्चय जरूरी है। किसी को क्षमा कर देने पर बाहरी बैर भाव तो कम हो ही जाता है किन्तु इसके साथ-साथ क्षमा प्रदान करने वाले के मन में क्लुषित भावों का भी क्षय हो जाता है और उसके अन्दर सकारात्मक ऊर्जा का संचार हो जाता है जो उसके विकास तथा समाज में शान्तिपूर्ण वातावरण के सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कहा भी है -

उत्तम क्षमा जहाँ मन होई, अन्तर बाहर शत्रु न कोई।

संसार में प्राणी को दूध और पानी के समान घुल मिल कर प्रेम से रहना चाहिए। कभी भी हृदय के आँगन में क्रोध की अग्नि नहीं जलने देना चाहिए क्योंकि क्रोध महा दुखदायी है कमठ का जीव पार्श्वनाथ पर क्रोध करने के कारण नरकों का दुख सहन करता था और क्षमा के धारक पार्श्वनाथ ने अपने भव दुख को समाप्त कर लिया। व्यवहार में यह युक्ति भी खूब प्रचलन में है- **सूपकारं कविवैद्यं बंदिनं शस्त्र पाणिनम। स्वामिनं धनिनं मूर्ख मर्मज्ञं न प्रकोपयेत्।।** रसोई बनाने वाले को, कवि को, वैद्य को, बन्दी को, हाथ में शस्त्र लिये हुए सैनिक को, स्वामी को, धनी को, मूर्ख को, और मर्म के जानने वाले को कभी भी कुपित नहीं करना चाहिए।

उत्तम मार्दव-

उत्तम मार्दव का अर्थ है मान अहंकार न करना। संसार में स्व और पर के दुःख का कारण व्यक्ति के अपने ही अन्दर का अहंकार है जो बिना वजह कलह का सबब बनता है।

छहढाला में पं. दौलतरामजी कहते हैं कि संसारी जीव पितृ व मातृ पक्ष की ताकत, रूप, ज्ञान, धन, बल, तपस्या तथा अपने उच्च पद मान-कषायादि के वशीभूत होकर अपने मूल स्वरूप व अपने स्वजनों की अवहेलना कर विनाश को प्राप्त होता है। मार्दव धर्म की साधना सीख देती है कि इस असार संसार में कोई भी वस्तु शास्वत नहीं है और न ही सुख प्रदान करने वाली है इसलिए वस्तु का अहंकार करके गर्व से फूलना नहीं चाहिए। हम सभी जानते हैं कि बलशाली रावण जो कि तीन खण्ड का अधिपति था, उसने भी अहंकार के अंधकार में अपने ही हाथों से अपने बुद्धि विवेक व भौतिक धन सम्पदा व देहादि का पतन किया। ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और सुन्दर शरीर से युक्त होने पर भी अहंकार नहीं करना जिस प्रकार बधिर मनुष्य के समक्ष वीणा, अन्धे के सामने चपल लोचना स्त्री और मृत मनुष्य के ऊपर डाली पुष्प माला व्यर्थ है उसी प्रकार अभिमानी मनुष्य का जीवन निष्फल है। किसी ने दही-बड़े से पूँछा कि भाई तुम बड़े क्यों हो तो उसने कहा कि दही में पड़ा हूँ इसलिए बड़ा हूँ। झुकना शालीनता का गुण होता है और अकड़कर चलना अहंकार को दर्शाता है। झुककर चलना मानवता की शान होती है अकड़कर चलना तो मुर्दे की पहचान होती है। मार्दव धर्म विनय धारण करने का साधन व साध्य दोनों है क्योंकि सत्य ही है - विनय महा धारे जो प्राणी, शिव वनिता की सखी बखानी। मान उस बिष रूपी बेल के समान है जिसके हरे भरे रहने से जीव त्रियंच और नरकगति का पात्र बन जाता है और इसका त्याग करने पर मुक्ति पथ की ओर अग्रसर होजाता है। कहा भी है-

मान बढ़ाई कारने क्यों मर रहा मूढ़। मरकर हाथी होयगा धरती लटके सूंड।।

बकरा जो में में करे. अपनी खाल खिचाय। मैना जो 'में' 'ना' कहे, दूध भात नित खाय।।

उत्तम आर्जव-

उत्तम आर्जव धर्म का अर्थ है कि कपट व मायाचारी न करने की साधना ताकि संकल्प और दृढ़ होसके। किसी अन्य के प्रति कपटपूर्ण व्यवहार हमारे स्वार्थ, लालच व ईर्ष्या आदि विकारी भावों की उपस्थिति को दर्शाता है। इस व्यवहार को असलीजामा पहनाने से पहले असत्य का तानाबाना अपने मन में बुनना होता है ताकि वह उसके समक्ष प्रकट न हो जाए। जरा विचार करें तो हम पाते हैं कि इस कपट से हम दूसरों को तो भौतिक नुकसान पहुँचाने में भले ही तथाकथित रूप से सफल हो जाते हों किन्तु सही मायनों में हमारे आन्तरिक मूल गुणों सकारात्मक शक्तियों पर जो कुठाराघात होता है उसकी भरपाई हम नहीं कर सकते। इसलिए हमें कपट रूप व्यवहार कभी नहीं करना चाहिए। सदैव अपने मन वचन को एक

रखकर अपने चंचल चित्त को रोकने के लिए आर्जव(ऋजुता) का सहारा लेना चाहिए। उनका विश्वास मत करो जिनकी भावनाएँ वक्त के साथ बदल जाती हैं, विश्वास उनका करो जिनकी भावना वैसी ही रहे जब आपका वक्त बदल जाए। किन्तु सभी के साथ अपना व्यवहार सम्यकत्व से परिपूर्ण रखो।

उत्तम सत्य-

"बोलो वही जिसके नीचे हस्ताक्षर कर सको , और सोचो वही जो वे हिचक बोल सको।"

सत्य सर्व धर्म का प्रधान धर्म है। सत्य का जगत में सबसे ऊँचा स्थान है। सत्य का मार्ग सबसे सीधा है। संसार समुद्र को पार करने के लिए सत्य ही नौकारूप है। भगवान महावीर ने अहिंसा को पहला धर्म कहा है तथा सत्य को दूसरे नंबर पर रखा है इसलिए सत्य को दूसरी नौका कहा है। सत्य ऐसा भी न बोलो जिससे प्रत्यक्ष या परोक्ष हिंसा हो। भ्रम की स्थितियां उत्पन्न हो जो दूसरों को सही निर्णय लेने में रोकती हों। दशलक्षण धर्म के प्रसंग में कहा भी है-

ऊँचे सिंहासन बैठी वसु नृप, धर्म का भूपति भया।

वसु झूठ सेती नरक पहुँचा, स्वर्ग में नारद गया।

राजा वसु ने झूठ का पक्ष लिया तो उसे नरक जाना पड़ा तथा सत्यघोष भी झूठ के कारण स्वयं अपने ही गले की फाँसी बना राग द्वेष के वशीभूत होकर असत्य वचन नहीं बोलना चाहिए। समाज को सही दिशा में ले जाने एवं स्थायित्व लाने हेतु सत्य के अलावा कोई भी छोटा रास्ता नहीं है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि तुलसीदास ने भी सत्याचार के संबंध में कहा है कि जीवन में जब संकट की स्थिति हो तब हमारे शब्दों में भक्ति प्रताप तेज और बल होना चाहिए। भक्ति हमारे शब्द और आचरण में बसती है प्रताप का अर्थ है जबरदस्त पुरुषार्थ यह बोलता ही नहीं करता भी है तेज हमारे शब्दों में पवित्रता लाता है और बल का अर्थ है अन्याय के विरुद्ध बल की वृत्ति। ईमानदारी और सत्य निष्ठा को मापने का कोई पैमाना नहीं होता। जीवन और मृत्यु जिह्वा के वश में है इसलिए अनुचित शब्दों का प्रयोग न करें। अहिंसा और सत्य का आश्रय इस दिशा में आत्मबल प्रदान करता है।

उत्तमशौच-

आत्मा को पवित्र करने वाला यह शौच धर्म है जो बाह्य शुद्धि के स्थान पर आन्तरिक भावों की विशुद्धि पर ध्यान देता है। क्रोधादि कषायों के कारण जो विकार व विकृतिजनित अशुचि उत्पन्न हुई है उसके जतन हेतु चिन्तन मनन और शुद्धाचरण के द्वारा साधना की जाती है।

इस हेतु विषयादिक पदार्थों के प्रति अपनी आसक्ति को समाप्त करना है। लोभ पाप का जनक है, कषायादि सर्व परिग्रह का त्याग करके जो व्यक्ति निर्लोभी बनता है वही मुक्ति रमा का वरण करता है। कर्म और भाग्य से अधिक पाने का लालच भी सदैव पाप कर्म कराता है और भावनात्मक अशुचि का कारण बनता है। शरीर शुद्धि तो व्यवहारनय की दृष्टि से शौच कही जाती है किन्तु विकारी भावों से मुक्त होने का जतन ही आन्तरिक शुचिता की ओर एक सफल कदम कदम है। इसके परिणामस्वरूप समाज में जो निर्मलता देखने को मिलेगी वह सच्चे सुख की प्रदाता होगी एवं मानवीयता का संरक्षण करने में कारगर सिद्ध होगी। फणहस्त नाम का व्यक्ति अकूत धन का स्वामी होकर भी लोभी था अन्त में उसने अनन्त दुर्गतियों के दुःखों को सहन किया। अंतरंग और बहिरंग समस्त परिग्रह के त्याग को उत्तम शौच धर्म कहते हैं। मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद को अंतरंग परिग्रह कहते हैं तथा सोना, चाँदी आदि भौतिक पदार्थ बहिरंग परिग्रह कहे जाते हैं।

उत्तम संयम-

बिषय कषाय में दौड़ते हुए आत्मा को रोककर सुमार्ग में प्रवर्तन हेतु जो आचरण किया जाता है उसे संयम कहते हैं। संयम संसार को समाप्त करने के लिए यम के समान है। यम-नियम की भाँति संयम को धारण कर अपनी जरूरतों को मर्यादित करने तथा पंचेन्द्रियों के विषयों को वश में करने से जितेन्द्रिय बनने हेतु आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। संयम के बिना जीवन, आचरण व विचार सभी बेलगाम हो जाते हैं। यह स्वयं के ऊपर अनुशासन करने की कला है जो हमें इन्द्रियों का दास होने से बचाता है। जैन दर्शन के अनुसार संयम व मानव का एक संबंध है। तीर्थंकर के वैराग्योपरान्त साधना वन तक पालकी को उठाकर लेजाने का अधिकार सर्व प्रथम मनुष्य को प्राप्त होता है क्योंकि मनुष्य पर्याय में ही सकल संयम को धारण किया जासकता है देव, त्रियंच व नरक पर्याय में नहीं। संयममय जीवन आर्थिक रूप से ही नहीं अपितु सुखमय सामाजिक वातावरण की दृष्टि से भी उपयोगी है। इसके चलते किसी भी राष्ट्र के सामूहिक संसाधनों के उपयोग पर सभी को समान अधिकार मिल सकेगा और आपाधापी पर रोक लगकर शांतिपूर्ण समाज की संरचना को आकार मिलेगा। संयमपूर्ण जीवन अनावश्यक उपार्जन की चिन्ताओं से मुक्त कर उस समय का आत्मिक उन्नति के लिए उपयोग कर सकता है।

उत्तम तप-

कहा जाता है कि बिना तपे सोना भी कुंदन नहीं बनता। तप आत्मा पर आवरणरूप अष्टकर्मों की निर्जरा का पुरुषार्थयुक्त साधन है। तप दो प्रकार का होता है - अंतरंगतप और बहिरंगतप। तत्त्वार्थ सूत्र में अंतरंग तप के उपभेद इस प्रकार कहे हैं- प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्ति, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, और ध्यान। ये भाव विशुद्धि का एक सशक्त माध्यम हैं। अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, व्रतपरिसंख्यान, कायक्लेश, विविक्त शय्याशन। आदि बहिरंग तप कहे गये हैं जो कर्मकांड व आचरण के माध्यम से जीवन शैली का हिस्सा बनते हैं। जो जीव अहंकार को छोड़कर तपस्या करता है वह मुक्ति को प्राप्त होता है। तपस्या करने से ही विषरूप भोग निर्विषता को प्राप्त होते हैं। श्रमण उत्कृष्ट साधना हेतु इन 12 तपों की आराधना करते हैं जबकि श्रावकों से यथाशक्ति नियत परिमाण में इस तप धर्म की आराधना की अपेक्षा की जाती है।

उत्तमत्याग-

अपनी न्यूनतम जरूरतों से अधिक पदार्थों का त्याग करना तथा विकारी भावों को छोड़ना उत्तम त्याग धर्म का लक्षण है। यह अपरिग्रह महाव्रत के पालन में सहायक है। संसार की कोई वस्तु साथ जाने वाली नहीं है अतः जड़ वस्तु में आसक्ति घटाकर अपना भार हल्का करना चाहिए। जैन दर्शन में चार प्रकार के दान को प्राधान्य दिया गया है- औषध(दवा आदि), शास्त्र(विद्या), अभय(निबल की रक्षा, क्षमा) और आहार (भोजन) का दान। उत्कृष्ट दान की कुछ शर्तें हैं यथा- दान देकर मन में हर्ष व उल्लास की अनुभूति रहनी चाहिए किन्तु उसका अभिमान नहीं। कहते हैं एक हाथ से किए गए दान का दूसरे हाथ को भी अहसास नहीं होना चाहिए। यदि जरूरतमंद को दिए गए दान का अहसास अपनी प्रशंसा के उद्देश्य से बार बार किया जाय तो सामने वाला व्यक्ति हीनता का अनुभव करता है। दान हेतु उत्तम पदार्थ का होना जरूरी है। सामान्यतया व्यवहार में यह देखा जाता है कि हम उस पदार्थ का दान करके आत्मप्रशंसा पाने की जुगत में लगे रहते हैं जिनका उपयोग हम अपने लिए करना नहीं चाहते। होना ये चाहिए कि जो हम अपने लिए पसंद न करें वह दूसरों के पल्ले मड़कर खोटी वाहवाही न लूटें। दान दाता व पात्र की उपयुक्तता उत्तम त्याग के लिए अनिवार्य है। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा गया है कि विधि द्रव्य दात्रपात्र विशेषा तद्विशेषः। सद् पात्र को दिया गया उत्तम पदार्थों का दान व्यवहारनय से उत्तम त्याग है। निश्चयनय

की दृष्टि से क्रोधादि 25 कषायों व राग-द्वेषादि विकारी भावों का त्याग ही सच्चा त्याग है। इसके अभ्यास व साधना की वकालत दश धर्म का यह अंग करता है।

उत्तम आकिञ्चन-

उत्तम आकिञ्चन का अर्थ है परिग्रह न करना। परिग्रह परिमाण के धीरे धीरे कम करते जाना उत्तम आकिञ्चन धर्म कहा गया है। भौतिकवाद व विलासतापूर्ण जीवनशैली में अंधे होकर हम संसाधनों के बेहताशा विदोहन व अराजकता को बढ़ावा दे रहे हैं। इसीलिए किसी के अकूत साधन सम्पत्ति है तो किसी के दो समय का भोजन व सिर छिपाने की छत भी नहीं है। समाज में से इस असमानता को कम करने हेतु यह आकिञ्चन धर्म महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। परिग्रह के 24 भेद बताए गए हैं जिसमें 10 बहिरंग और 14 अंतरंग परिग्रह हैं। हमें संसार में रहकर यह चिंतन करना चाहिए कि इस पृथ्वी का अणुमात्र भी मेरा नहीं है मैं आकिञ्चन्य हूँ चैतन्य आत्मा ही मेरा है। इस संसार में परिग्रह रूपी पिशाच ने संसारी प्राणी को सर्वाधिक त्रास दिया है जो परिग्रह को तजता है वही सिद्ध शिला में वास करता है।

उत्तम ब्रह्मचर्य-

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म का अर्थ है कि मन के कामुक, अनैतिक विचारों व आचरण पर अंकुश लगाकर स्वयं को ब्रह्मत्व की ओर मोड़ना। सामाजिक - धार्मिक व्यवस्थाओं के तहत संसति को आगे बढ़ाने हेतु उसके पास जो है उससे वह संतुष्ट न होकर बाहर की ओर कामांधता दर्शाता रहता है। ब्रह्मचर्य के अभाव में समाज में अराजकता का बोलबाला बड़ा है। संघर्ष व वैमनस्यता ने स्थान लिया है। नारी का शोषण बढ़ा है और मानवाधिकारों के हनन की आज पराकाष्ठा हो चली है। ऐसे में सामाजिक शांति कायम करने हेतु यह स्पष्ट तौरपर समझने का प्रयास करना होगा कि बाहरी सांसारिक आकर्षण परिभ्रमण के निमित्त कारण हैं इसलिए अपने विकारी भाव के शमन करने हेतु देखने का नजरिया बदलना है। क्योंकि पदार्थों की उपस्थिति व स्थिति तो बदल नहीं सकती अगर कुछ बदला जा सकता है तो वह है अपना उपयोग जो सजीव और अजीव पर पदार्थों में लगा होता है। पर स्त्री रमण व विषय भोग आत्मिक पतन के कारण हैं। इसीलिए सुधी श्रमण इनका त्याग करते हैं। कहा भी है- संसार में विषयाभिलाषा तजि गए जोगीस्वरा। ब्रह्मचर्य के द्वारा परमब्रह्म की निर्बाध साधना की जा सकती है। इस संदर्भ में गुणस्थान की द्रव्य लिंगी व भावलिंगी सिद्धान्त की सोच का इस दिशा में अनुकरण व अध्ययन समझने की दृष्टि से प्रसंगिक

होगा। उदाहरणार्थ भावबन्ध से अन्तर्मुहूर्त में दिशा परिवर्तन हो जाता है। वैश्या व साध्वी के एक दृष्टान्त के द्वारा इसे भली-भाँति समझा जा सकता है- एक वेश्या एवं एक साध्वी के रहने का स्थान आमने- सामने था। दोनों एक दूसरे के वैभव व कार्य-कलापों को देखती और उनके न होने का मलाल भी करती थी। अर्थात् वेश्या साध्वी को देखकर सोचती थी कि ये साध्वी कितनी नसीब वाली हैं जिन्हें धर्म-ध्यान करने का सुयोग मिला है वहीं साध्वी के भाव वेश्या के ठाठ-बाट को देखकर उनको न भोग पाने का अफसोस मनोमन व्यक्त करते थे। यह स्थिति(भेष या क्रियाचरण) के विपरीत मनोदशा ही तो थी जिसने उनकी गति की दिशा ही बदल दी। हुआ यूं जब वेश्या मरी तो उसका मृत शरीर जंगल में फेंका गया किन्तु परिणाम विशुद्धि के चलते वह सद् गति को प्राप्त हुई और साध्वी की मृत्यु महोत्सव की पालकी तो सजी किन्तु परभव बिगड़ गया और वे नरक गति को प्राप्त हुई।

यदि कोई श्रमण या श्रावक सांसारिक भोगविलास का प्रत्यक्ष रूप से त्याग कर देता है किन्तु उसका मन उन्हीं के चिन्तवन में रत रहता है या भटकता रहता है तो यह ब्रह्मचर्य की उपासना का खण्डन ही माना जाएगा। इसके विपरीत यदि वह सांसारिकता में रहते हुए भावनात्मक तौर पर इनके प्रति अनासक्ति धारण कर लेता है तो वह सही मायनों में ब्रह्मचर्य का पालन करता है। इसीलिए छःखण्ड के अधिपति प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ के पुत्र भरत चक्रवर्ती को ब्रह्म योगी कहा जाता था जिन्हें अनासक्ति योग के अभ्यास के चलते क्षण मात्र में केवलज्ञान हो गया था। यह धर्म सकारात्क ऊर्जा के सृजन में अहम् भूमिका निभाता है। जब ऊर्जा प्रार्थना से जुड़ती है तब परमात्मा बनाती है और जब ऊर्जा वासना से जुड़ती है तब पापात्मा बनाती है।

उपसंहार-

अन्त में हम कह सकते हैं कि जैन दर्शन में वर्णित धर्म के दश लक्षण मानव विकास में अहम् भूमिका निभाते हैं। स्वस्थ समाज और निरोगी मानसिकता के विकास हेतु ये लक्षण मनुष्य को कषाय परिणाम और विकारी भावनाओं से दूर करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं जिससे मनुष्य पाषविक वृत्तिको छोड़कर, मान कषाय के दंभ के दायरे से बाहर निकल कर सही- गलत और अच्छे- बुरे में फर्क करने की अपनी अन्तर्निहित क्षमताओं व शक्तियों को जाग्रत कर सके जिनको वह प्रमाद व अज्ञानवश भुला बैठा है। रण में विजय प्राप्त करने से व्यक्ति शूरवीर नहीं होता, अध्ययन करने से पंडित नहीं होता, वाणी की चतुराई से वक्ता नहीं होता और धन के देने से दाता नहीं होता किन्तु इन्द्रियों की विजय से शूरवीर,

धर्माचरण से पंडित, हितकारी प्रिय वचन बोलने से वक्ता तथा दूसरों को सम्मान देने से दाता होता है। सदगुण तो चीथड़ों में भी उतना ही चमकता है जितना कि भव्य वेषभूषा में। संयम धारो तप करो मन मत करो अधीर। तरूवर बढ़त फलत वही जो पावे शुचि नीर। जैसी उक्तियाँ भी उपरोक्त कथन का समर्थन करती प्रतीत होती हैं। ब्याज से दोगुना व्यापार से चोगुना, खेत से सौगुना और दान देने से अनन्तगुना लाभ होता है। ऐसे धर्म के दस लक्षणों पर चलकर मानव प्रकृति को अपने अधीन करने की कोशिश के बजाय प्रकृति को अपना सहचर बनाने का प्रयास करने के लिए प्रेरित होगा और ऐसे सुख और आनंद की अनुभूति करेगा जो उस इत्र की भाँति है हैं जिसे जितना अधिक दूसरों पर छिड़केंगे, उतनी ही अधिक सुगंध आपके भीतर समायेगी। यही स्वस्थ समाज की रचना का आधार है।

वर्तमान पत्रव्यवहार का पता- डॉ. दीपा जैन c/o डॉ. लोकेश जैन, फैकल्टी-सी.एस. आर.एम., गुजरात विद्यापीठ, ग्रामीण परिसर-राँधेजा 382620 जिला- गांधीनगर (गुजरात) 9427026647

संदर्भ-

1. श्री तत्त्वार्थसूत्रम्- टीका-हरिभद्र, ऋषभदेव केशरीमल संस्था, रतलाम सं. 1662.
2. तत्त्वार्थसूत्र, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोधसंस्थान, वाराणसी 1984. नवम अध्याय-9
3. तत्त्वार्थाधिगमसूत्र (सिद्धसेनगणि कृत भाष्यानुसारिणिका समलंकृत, हीरालाल रसिकलाल कापड़िया की टीका।
4. पं. दौलतरामजी कृत छःढाला